AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

कबीर की सद्गुरू विषयक मीमांसा

ORIGINAL ARTICLE

Author

डॉ. अमृत प्रजापति,

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
नन्द लाल सिंह महाविद्यालय,
जयप्रकाश यूनिवर्सिटी,
छपरा, बिहार, भारत

शोध सार

कबीर ने जिस दर्शन की प्रतिस्थापना की वह वैदिक और वेदोत्तर साहित्य की ही सरल व्याख्या है जिसे जनता के बीच उपस्थित होकर मिश्रित शब्दों में अपनी बात कही। भक्ति विषयक विवेचना में उन्होंने सद्गुरु की महिमा पर विशेष जोर देकर ब्रह्म को प्राप्त करने का एक मात्र साधन बताया। ब्रह्म को प्राप्त करने में व्याप्त बाधा और उसको दूर करने हेतु सद्गुरु के उपदेश, उनकी आज्ञा को ही मूल मन्त्र बताया। लोकाचार, भवबाधा बनकर मानव को सत्य से दूर ले जाती है। सद्गुरु की कृपा प्राप्त कर व्यक्ति सत्य का अनुसरण कर भवसागर से पार पा जाता है। कबीर ने उन्ही बातों को कहा जो अनुभव में था। उन्होंने आचारमूलक धर्म और सिद्धांत का कठोर खण्डन किया। सम्प्रदाय मुक्त चिंतन का अनुसरण करते हुए गुरु परपरा के आदर्श को कबीर ने आडम्बर से पूरी तरह मुक्त कर दिया है। यदि वह इसमें लिप्त है तो सद्गुरु कहलाने का अधिकारी नहीं है। सद्गुरु विषयक मीमांशा में ब्रह्म प्राप्ति के तीन पक्ष की सहज व्याख्या कबीर ने बड़े ही सहज भाव से की है।

मुख्य शब्द

कबीर, सद्गुरु, साधक, भक्ति, ईश्वर, संत।

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन युग, स्वर्णिम युग की दृष्टि से आज तक समादृत है। विभिन्न विद्वानों ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को अपनी–अपनी वैचारिक दृष्टि से परख कर सैधांतिक रूप से कुछ स्थापनाएं की है जो कि प्रमाण और अर्द्धप्रमाण के बीच आज भी मनुष्य के विचार का केन्द्र बनी हुई है। मध्यकालीन काव्य साहित्य के सर्वाधिक सम्मानित और सर्वाधिक विवादास्पद विचारक और कवि कबीर को आज कौन नहीं जानता।

भारतीय दर्शन में विचार की जो पद्धति है वह वैदिक साहित्य के और वेदोत्तर आगम साहित्य के आस–पास घूमती रही है। कबीर ने पहली बार दर्शन को, सैधांतिक पद्धति को व्यावहारिक दृष्टि से नगन्य कर दिया और लोक जीवन के लिए एक ऐसे दर्शन का सृजन किया जो अत्यन्त ही सरल अत्यंत ही सहज और अत्यन्त ही सुबोध है। कबीर के दर्शन मे यद्यपि ब्रह्म, जीव, माया की गम्भीर विवेचना है लेकिन इस दार्शनिक तत्वों को भी कबीर ने इतने सरल भाव से समझाया है कि सत्य, सामान्य मनुष्य के हृदय में सीधा उतर गया।

कबीर ने अपने उपदेशों में लोकाचार और मायावी आचरण को धर्म की दृष्टि से घातक बतलाया है। ''धर्म में व्याप्त विकारो तथा बाह्याडम्बरो की निन्दा करके कबीर पथ–भ्रष्ट तथा लक्ष्यच्युत जनता को धर्म के राजमार्ग तथा उचित मार्ग पर लाना चाहते थे। धर्म और साधना में कबीर को ऐचातानी पसंद नहीं थी। साधना तो अत्यंन्त प्रिय

विषय है। साधना के क्षेत्र मे दैनिक औचित्य के मध्यस्थ कोई भी विरोधी भावनाएँ नहीं है। कबीर इस सत्य से परिचित थे। इसी कारण कबीर मर्म और साधना के सहज पथ को ग्रहण करने के लिए अपनी समकालीन जनता को उपदेश दिया। कबीर ने जनता को बताया कि समस्त दुरुहताओं और दाँव–पेंचों की क्या निःसारता है और सहज पथ ही सरल पथ है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकता है। सहज पथ सबके लिए खुला है। उसमें जाति–पाति वर्ग कुल आदि का प्रतिबन्ध नहीं है। सम्प्रदाय और मत–मतांतरों की भाँति इसमें बाह्याडम्बरो की आवश्यकता नहीं है।''[1]

कबीर के दर्शन की सर्वाधिक मौलिक विशेषता उनकी सद्गुरु के सन्दर्भ में की गयी दार्शनिक मीमांसा है। कबीर से पहले किसी भी दार्शनिक ने प्रामाणिक रूप से सद्गुरू को अपने दर्शन केन्द्रीय तत्व के रूप में नहीं देखा। कबीर के दर्शन में सद्गुरु का स्थान सबसे ऊपर और सर्वोच्च श्रेणी को प्राप्त एक अति मानवीय और अलौकिक सत्ता के रूप में स्थापित है। कहीं–कही तो कबीर ने सद्गुरू को ब्रह्म के रूप में रूपक बना कर काव्य मे ऐसे प्रस्तुत किया है कि ब्रह्म का और गुरु का भेद ही खत्म हो गया।

कबीर के पूववर्ती जो सन्त परम्परा रही है उस संत परंपरा का अवदान कबीर को रामानन्द की देशना के रूप में वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ। उपदेश के द्वारा समझायी गयी कोई बात उसको कबीर ने इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति दी कि वर्तमान समय में कबीर का दर्शन सद्गुरु की पूजा और उपासना के रूप में काव्य और लोकगीत के स्वर में मुखर होकर जन–जन की वाणी में भक्ति रस और उसके आस्वादन का पर्याय बन गया।

कबीर ने ईश्वर को जानने के लिए सद्गुरु की भक्ति पर अनिवार्य रूप से बल दिया है उसके पीछे बहुत ही सुलझा हुआ एक कारण विद्यमान है जो प्रत्येक साधक के लिए कबीर ने अनिवार्य कर दिया है। कबीर कहते है कि यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापक है घट–घट में उसी का वास है, कण–कण में वही दिख रहा है उससे भिन्न कोई भी सत्ता अनिवार्य नहीं है। लेकिन ब्रह्म से सीधे साक्षात्कार में साधक और ब्रह्म के बीच एक व्यापक बाधा है जो गुरु की कृपा और उनके आध्यात्मिक उपदेश के बिना दूर नहीं हो सकता है। साधक और ब्रह्म के मध्य जो सबसे बड़ी बाधा है वह है साधक का अपना अहंकार। सद्गुरु साधक के सम्पूर्ण अहंकार को अपने में समाहित कर उसके अन्तरूकरण को निर्मल बना देता है। अन्तःकरण की यह निर्मलता साधक के अपने प्रयास से लगभग असंभव, दुरूह, दुष्कर और सहन सभ्य नहीं है। साधक यदि अपने अंतःकरण को शोधन की प्रक्रिया से गुजरता है तब कही न कही ''मैं कर रहा हुँ, यह हो रहा है'' इन भावनाओ के साथ उसका तादात्म्य हो जाता हो और ब्रह्मज्ञान के अनुभव में यह तादात्मय सबसे बड़ा अभ्यास है। यह अभ्यास सद्गुरु की कृपा के बिना एवं उनके सम्यक उपदेश के बिना कभी भी दूर नहीं होगा। कबीर कहते है कि यह सद्गुरु की साधक पर बड़ी अनन्त कि कृपा है और यही अनंत कृपा अन्ततोगत्वा उस अनंत ब्रह्म के साक्षात्कार में हेतु है। इसी सन्दर्भ में कबीर ने कहा हैः

'सद्गुरू की महिमा अनंत
अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघारिया
अनंत दिखावनहार।।''[2]

कबीर ने अपने दर्शन में सद्गुरू के महत्व से इतनी ऊँचाई पर स्थापित कर दिया है कि वस्तुतः वहाँ से देखने पर संसार की सभी चीजें क्षुद्र माया में और प्रपंच के रूप में दिखाई देती है। उस ऊँचाई पर पहुँच कर संसार केवल आभास मात्र रह जाता है और सैधांतिक दृष्टि से जगता, जगत न रहकर सबकुछ ब्रह्ममय ही प्रतीत होता है। जगत का आभास चिदाभास बन कर ब्रह्माभास अनुभव में आता हुआ जन्म का ज्ञान अपने मूल स्वरूप में ग्रहित होने के लिए साधक के हृदय में एक विलक्षण आनन्द का सृजन करता है। इस आनन्द को कबीर ने ब्रह्मरस की संज्ञा दी। यही ब्रह्म रस जीव और जगत की सत्ता का निषेध करता हुआ या केवल उसकी व्यवाहारिक उपयोगिता बतलाकर उसे परमार्थिक रूप से नगण्य काता हुआ साखी के रूप में कबीर के अन्तःकरण से अभिव्यक्त होता है।

कबीर ने गुरू को ब्रह्म सिद्धि में अनिवार्य तत्व माना है। साधना के पथ पर गुरु एक ऐसा तत्व है जिसका

निषेध किसी भी रूप में कोई भी साधक नहीं कर सकता। सद्गुरु साधना के पथ पर एक बहुत बड़ा समाधान है। कबीर ने व्यावहारिक दृष्टि से सद्गुरु को वैध की संज्ञा दी है जो भवरोग की अचूक दवा जानता है। कबीर ने कहा कि मैं लोकाचार और लोकदृष्टि षड़यंत्र में फँसा हुआ था और विभिन्न मतों को अपने हृदय में स्थान दे रखा था लेकिन सद्गुरू ने मेरे हाथ मे ज्ञान रूपी दीपक देकर मेरे संशय और संदेह की ग्रन्थि की पूरी तरह से काट दिया है। इसी सत्य को कबीर ने बीजक में कुछ इस तरह कहा हैः

''पीछे लागा जाई था
लोक वेद के साथि।
आगे थे सद्गुरू मिल्या,
दीपक दीया हाथि।।''[3]

कबीर ने कहा कि सद्गुरु की अनुकंपा से संसार का आवागमन मिट गया। इस भवचक्र में अब मैं पुनः दुबारा नहीं आऊँगा।

''दीपक दीया तेल भरि,
बाती दई अघटट।
पूरा किया बिसाहूंणा,
बहुरि न आवो हट्ट।''[4]

कबीर कहते हैं कि बहुत अच्छा हुआ जो मुझे सद्गुरु मिल गये अन्यथा बहुत बड़ी हानि हो जाती और मैं मोहित पतंग की तरह माया रूपी अग्नि में जलकर भस्म हो जाता।

''भली भई जु गुरु मिल्या,
नहीं तर होती हाणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यू,
पड़ता पूरी जाणि।।''[5]

कबीर ने इस संसार की सृष्टि और व्यापार को माया की संज्ञा दी है। यहाँ माया से तात्पर्य उस वस्तु से है जो व्यवहार काल मे सत्य की तरह भांजती है और सिद्धान्त में उसका लोप हो जाता है। मनुष्य पतंगे की तरह भ्रम से विवश होता हुआ माया की विषय जन्य अग्नि की लौ में कूदना चाहता है लेकिन उसे सत्य का ज्ञान नहीं है।

''माया दीपक नर पतंग
भ्रमि भ्रमिइवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थै,
एक आध उबरंत।।''[6]

कबीर ने कहा कि साधक यदि सत्य के मार्ग मे चल रहा है और आत्मशोधन के किसी पद्धति का अनुसरण करता है तो संभव है वह किसी माया के कुचक्र में पड़कर आत्मसम्मोहित और अपने वास्तविक सत्य स्वरूप के बोध से च्युत हो जाए और उसे अपने अस्तित्व का कहीं पता ठिकाना ही न मिले। लेकिन कबीर कहते है कि चैतन्य देश मे बैठा हुआ सदगुरू एक सच्चे शिष्य को कभी भी पथभ्रष्ट नहीं होने देता, उसकी सत्य की शोध को निर्विघ्न रखता हुआ उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचा देता है। कबीर ने कहा कि यदि ऐसे गुरु हमारे पास है तो हमें निःशंक हो जाना चाहिए।

''चेतनि चौकी बैसि करि,
सद्गुरु दीन्हाँ धीर।
निरभ, होई निसंक भजि,
केवल कहै कबीर।।''[6]

साधक के जीवन में कभी ऐसे क्षण भी आते हैं कि वह न चाहते हु, भी भवसागर की दुविधा में फँस जाता है और अज्ञान का आचरण करता हुआ अपने सत्य स्वरूप को विस्तृत कर देता है। कबीर कहते हैं कि यदि साधक सच्चा है, आत्मशोध की जिसमें लगन है जो सत्य का आकांक्षी है उसे उस भवसागर में भी सद्गुरु की कृपा का बोध होगा और माया का उल्लंघन कर देगा।

''बूड़े थे पर ऊबरे
गुर की लहरि चमकि।
भेरा देख्यो जरजरा (तब)
उतरि पड़े फरकि।।''[7]

कबीर अपने समय के बहुत बड़े सद्गुरू के। कबीर ने अपने दर्शन में उन्हीं बातों को समाहित किया है, जिनका अनुभव उन्होंने किया, जिस सत्य का अनुभव उन्होंने नहीं किया उसके विषय में कबीर ने कुछ भी नहीं कहा। कबीर ने सामान्य मनुष्य को सामान्य ही बने रहने का उपदेश दिया। गुरु परम्परा में जो आडम्बर आ गया था उसका विरोध कबीर ने जगह–जगह किया है। कबीर ने आचारमूलक धर्म का और सिद्धांत का कठोर खण्डन किया। उनके व्यक्तित्व में कही भी किंचित मात्र भी संसार संबंधी विषय की ग्रन्थि नहीं थी। कबीर कहते हैः

'धन्य है वे गुरू! वे सचमुच उस भ्रमरी के सामान है जो निरंतर ध्यान का अभ्यास कराकर कीट को भी भ्रमरी के सामान है बना देती है। कीड़ा भ्रमरी हो गया, नयी पाँखे फूट गयी, नया रंग छा गया, नयी शक्ति स्फुरित हुई। उन्होंने जाति नहीं देखी, कुल नहीं विचारा, अपने आप में मिला लिया। नाले का पानी गंगा में जाकर गंगा हो जाता है, कबीर गुरू में मिलकर तद्रूप हो गये। धन्य हो गुरो, तुमने चंचल मन को पंगु बना दिया, तत्व में तत्वातीत को दिखा दिया, बन्धन से निर्बन्धन किया, अगम्य तक गति कर दी। केवल एक ही प्रेम का प्रसंग तुमने सिखाया,पर कैसा अचरज है कि इस प्रेम मेघ की वर्षा से यह सारा शरीर भींग गया! रससिक्त आत्मा में भक्ति का अंकुर लहलहा उठा।''[8]

कबीर रामानन्द के शिष्य थे और पूरी तरह से सम्प्रदाय मुक्त चिंतन के पक्षधर थे। रामानन्द यद्यपि वैष्णव परंपरा के संत थे लेकिन कबीर के चिन्तन में वैष्णव परम्परा का समावेश तो है, किन्तु कबीर उस परम्परा से बंधे हुए नही ह इसीलिए उनके राम सगुण न होकर निर्गुण हो जाते है। कबीर जिस परम्परा से जुड़े है वह परम्परा संतमत की परम्परा है जिसका प्रारम्भ सरहपा, गोरख आदि सिद्धांतो से होता हुआ कबीर तक आया। इस परम्परा की मुख्य विशेषताओं में सबसे बड़ी विशेषता है गुरु की वन्दना और गुरू की भक्ति के लिए सर्वस्व का समर्पण।

गुरु भक्ति में कबीर का व्यक्तित्व इतना उज्ज्वल था कि उन्होंने अपनी बात कहने में समाज के किसी भी विरोधी पक्ष की चिंता नहीं की। वे मान और अपमान के स्तर से उपर उठ चुके थे। उन्हें मोह, विद्रोह, अशान्ति, वैमनस्य प्रतिहिंसा की भावना से घृणा थी। वे शान्ति प्रिय थे। अहिंसा और सरलता के वे समर्थक थे। करनी और कथनी में वे भेद नहीं मानते थे। लौकिक जीवन से ऊपर उठने की उनमें साध थी। वे प्रेमी, भक्त, साधक, योगी और विश्वासी थे। दुनिया से वे घृणा करते थे। भेष और वस्त्राचार तथा सत्य के नाम पर अनाचार देख कर वे जल उठते थे। सम दृष्टी और सहज को जीवन में वे कार्यान्वित करना चाहते थे। उदारता, विश्व, बंधुत्व, दीनता, धैर्य, संतोष, सहनशीलता और क्षमा उनकी चारित्रिगत विशेषता थी। सरलप्रियता के कारण उन्हें जीवन मे विरोधों के अनेक तूफानों का सामना करना पड़ा। कबीर स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। उसमें प्रतिमा थी, मौलिकता थी। उनकी वाणी में बल और हृदय में साहस था। अप्रिय सत्य कहने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं था। मुरव्वत और रियासत की भावना उनमें स्थान नहीं पा सकी थी।[9]

कबीर ने सन्तमत की गुरु परपरा के आदर्श को आडम्बर से पूरी तरह मुक्त कर दिया है। यदि कोई गुरु परम्परा में प्रवाचक के पद पर आसीन है और आडम्बर युक्त जीवन जीता है तो वह सच्चे अर्थो मे सद्गुरू नहीं हो सकता। ऐसे आडम्बर युक्त लोग स्वयं अंधे गर्त में विलिन होकर अपने शिष्य को भी उसी अधर्मयुक्त मूढ़गति की ओर ले जाने का कार्य करते है। इसी बात को कबीर ने अपनी साखी में कुछ इस प्रकार कहा हैः

''जाका गुरु भी अंधला,
चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया,
दुन्यु कूप पर्यंत।।[10]

निष्कर्ष

कबीर की सद्गुरु विषयक मीमांसा के तीन प्रधान पक्ष है। प्रथम पक्ष एक साधक का है जो साधना के उद्देश्य से गुरु के शरणागत होता है और अपने लक्ष्य आत्मस्वरूप को उपलब्ध करता हुआ ब्रह्म रूप हो जाता है। इस पक्ष में गुरु साधना के केन्द्र का आधार है। दुसरे पक्ष में गुरु का पक्ष सद्गुरु विषयक भक्ति और प्रेम का पक्ष है जहाँ सद्गुरु के प्रति एक सामान्य मनुष्य जो साधना का अ ब स भी नहीं जानता है, वह गुरु को प्रेम और भक्ति से प्रसन्न करता हुआ संसार से पार चला जाता है। सद्गुरु का तीसरा पक्ष गुढ़ और रहस्यमयी है जिसको कबीर ने अगम कहा है, सद्गुरू का यह पक्ष साधना और भक्ति से अनंत गुणा ऊपर ज्ञान का शुद्ध स्वरूप है। इस पक्ष में ज्ञाता, ज्ञान और गेय की त्रिकुटी एक साथ मिल जाती है। खाली एक शून्य बचता है जिसे वेदान्त में परम विदेह की अवस्था कहा गया। उसी अवस्था को कबीर ने सद्गुरु के तीसरे पक्ष से जोड़कर देखा है इसीलिए हम देखते है कि कबीर की सद्गुरु विषयक विवेचना में कहीं साधना है, कहीं प्रेम है, कहीं विरह है, कहीं पीड़ा है और कहीं–कहीं वो गुरु में ऐसे मिल जाते हैं जैसे नमक आटे में मिल जाता है और जल की बूंद समुद्र में मिल जाती है।

सन्दर्भ सूची

1. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
2. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
3. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
4. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
5. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
6. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
7. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
8. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कबीर।
9. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।
10. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, कबीर ग्रंथावली।

––==00==––